International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences 2019; 4(2): 238-240

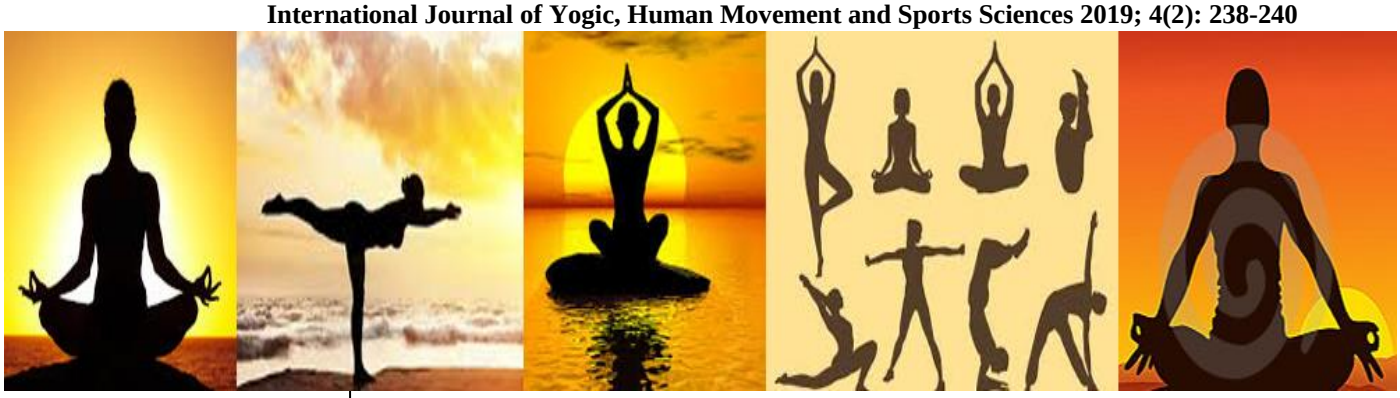

ISSN: 2456-4419
Impact Factor: (RJIF): 5.18
Yoga 2019; 4(2): 238-240
© 2019 Yoga
www.theyogicjournal.com
Received: 04-05-2019
Accepted: 08-06-2019

डॉ. रमेशचन्द
सहायक आचार्य (अतिथि), योग विज्ञान, शारीरिक शिक्षा विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, (राज.), भारत।

Corresponding Author:
डॉ. रमेशचन्द
सहायक आचार्य (अतिथि), योग विज्ञान, शारीरिक शिक्षा विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, (राज.), भारत।

वैदिक साहित्य में हठयोग विद्या

डॉ. रमेशचन्द

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोधपत्र में वर्णित किया गया है कि हठयोग योग विज्ञान की महत्त्वपूर्ण विद्या है और जिसका विस्तृत विवेचन वेदों, उपनिषदों, पुराणों के अतिरिक्त आयुर्वेद शास्त्रा के ग्रंथों में पाया जाता है।

योग के सभी मार्गो में हठयोग को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसका संबंध मनुष्य के भौतिक शरीर से होता है। सामान्य व्यक्ति हठयोग को हठपूर्वक की जाने वाली योग–प्रणाली समझते है, लेकिन यह एक व्यवस्थित साधना प्राप्ति है। हठयोग में 'ह' का तात्पर्य– प्राणशक्ति, पिंघला नाड़ी, सूर्यस्वर, पुरूष, सक्रियता, उष्णता, बहिर्मुखता, अनुकम्पी स्नायु संस्थान व 'ठ' शब्द का तात्पर्य– मनशक्ति, इडानाड़ी, चन्द्रस्वर, स्त्राी, निष्क्रियता, शीतलता, अंतर्मुखता, परानुकम्पी स्नायु संस्थान से है। प्राणशक्ति का संबंध व्यक्ति के शारीरिक कार्य व जीवनचर्या जैसे– श्वसन, पाचन, उत्सर्जन व रक्त परिभ्रमण आदि क्रियाओं को सम्पन्न कराने से है जबकि मनस शक्ति का संबंध व्यक्ति के मानसिक कार्यो जैसे– जानना, मनन–चिंतन, ध्यान, स्मृति, सत्–असत् विवेक आदि क्रियाओं को सम्पन्न कराने से है। प्राणशक्ति व मनशक्ति दोनों के संतुलित रूप से कार्य करने पर व्यक्ति का समग्र विकास होता है और जिससे उसके कार्य और व्यवहार भी सुव्यवस्थित ढंग से सम्पादित होते है, लेकिन इसके विपरीत अर्थात् दोनों शक्तियों में असंतुलन की स्थिति में व्यक्ति के केवल एक ही पक्ष का विकास होता है और यहा तक कि दोनों शक्तियों में अधिक असंतुलन की स्थिति अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों को जन्म देती है अतः हठयोग विज्ञान दोनों शक्तियों के मध्य संतुलन और सांमजस्य स्थापित करता है।

वेदों में हठयोग विद्या के संबंध में बात की जाए तो हठयोग परम्परा के मुख्य विषय के रूप में प्रचलित प्राणायाम का प्रयोग प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में वर्णित है। ऋग्वेद के दषम मण्डल में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। एक जगह प्रयुक्त हुआ है–"प्राणाद्वायुरजायत"[2] अर्थात् आदि पुरुष के प्राण से वायु प्रकट हुई है। ऋग्वेद के दसम् मण्डल में अपान की और भी निर्देश किया गया है।[3] इसी प्रकार अथर्ववेद में प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण तत्व 'प्राण' की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है–फ्प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वेश्वरो यस्मिन् सर्वप्रतिष्ठितम्य।।[4] प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रामिव प्रियम्। प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणाति यच्च न।।[5] 'अर्थात् उस प्राण को नमस्कार है जिसके वश में यह सम्पूर्ण संसार है। सब प्राणियों का जो ईश्वर है तथा जिसमें सभी प्रतिष्ठित हैं अर्थात् जिसकी सत्ता से ही सबकी सत्ता है।' 'प्राण पिता है और उसके लिए सारे प्राणी प्रिय पुत्रा की तरह हैं। प्राण सम्पूर्ण सृष्टि का ईश्वर है। जो श्वास लेता है और जो श्वास नहीं लेता है अर्थात् जड़–चेतन जगत् दोनों में प्राण विद्यमान है।' इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में ही शरीर में आठ चक्रों व नवद्वारों के संबंध में बताते हुए कहा गया है–"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।[6] अर्थात् इस शरीर रूपी अयोध्यापुरी में आठ चक्र और इसके नौ द्वार है इसमें आत्मा निवास करता है। अतः इस शरीर के माध्यम से योग विद्या के द्वारा नवद्वारों को बंदकर व अष्टचक्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुए उस आत्मा को जानना चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि कथित श्लोक में हठयोग के अन्तिम लक्ष्य आत्मा अर्थात् आत्मज्ञान को जानने के लिए कहा गया है। वेदों में शरीरस्थ नाड़ियों और प्राण आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद की अंकसंहिता मे कहा गया है–"क्व त्रीचक्रा त्रिाव्रतो रथस्य क त्रायो बन्धुरो ये सनीलाः। कदा योगो वाजिनो राम्भस्य येन यज्ञं ना सत्योपयाथः"।।[7] अर्थात् इस मंत्रा में शरीर को रथ की संज्ञा दी गई है और कहा गया है–इस शरीर रूपी रथ के मध्य के नीचे के तीन चक्र जिनके नाम–मूलाधर, स्वाध्ष्ठिान व मणिपुर है, वे कहाँ

है? और उनका स्थान विशेष कोन सा है? यह हमें ज्ञात नहीं है। जीवनधरक कन्दर्प नामक वायु कहाँ है? यह भी हमें ज्ञात नहीं है। तथा सहस्त्रा दल कमल सहित ऊपर के तीन चक्र जिनके नाम– अनाहत, विष्णु और आज्ञा चक्र है। वे कहाँ है? यह भी हमें ज्ञात नहीं है। सर्वशक्तिमान सर्वसम्पन्न स्व–प्रकाश शिव अर्थात परमात्म तत्व का स्थान शरीर में कहाँ है? मूलाधर में सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति का परमात्म शिव के साथ लय किस समय और किस प्रकार होता है? इसका भी हमें ज्ञान नहीं हैं। हे परमात्मा! आपकी असीम कृपा से लययोग संबंधी सभी बातें मुझे ज्ञात हो और आपकी असीम कृपा से मैं इस लययोग का अभ्यास करूँ।

इसी क्रम में उपनिषदों के संबध में बात की जाये तो उपनिषदों में हठयोग की चर्चा प्रसंगवश अनेक स्थानों पर हुई है। श्वेताष्वतरोपनिषद् में योगी के लिए योगाभ्यास हेतु कोन सा स्थान उत्तम है। इस संबंध में कहा गया है–"समे शुचौ शर्करा वह्नि बालुका, विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोऽनुकूले न तु चक्षुः पीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्"।।[8] अर्थात् योगी को समतल के साथ स्थान जो कंकड़, अग्नि, बालू, जल और शब्द(कोलाहल) से रहित हो, वह स्थान मन को प्रिय लगने वाला हो तथा जहाँ आँखों को पीड़ा देने वाली कोई वस्तु न हो। ऐसा स्थान योगाभ्यास के लिए उत्तम है क्योंकि ऐसे स्थान में योगाभ्यास करने से मन शीघ्रता से एकाग्र होता है। श्वेताष्वरोपनिषद् में ही कहा गया हैं–"लघुत्वमारोग्यलोलुप्तं वर्ण प्रसादं स्वर सौश्ठवं च। गन्धः शुभो मूत्रापुरीषमल्पं योग प्रवृति प्रथमा वदन्ति"।।[9] अर्थात् शरीर का हल्का होना, ओराग्यता, इन्द्रियों की विषयासक्ति की भावना नष्ट होना, नेत्रों को प्रसन्न करने वाली शरीर की कांति, मधुर स्वभाव, शुभ गंध आदि योग प्रवृति के प्रथम लक्षण के अन्तर्गत आते है। "इसी भाव को हठप्रदीपिका में हठसिद्धि के लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है।[10] इसी उपनिषद् में आगे कहा गया है–" न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः। प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।[11] अर्थात् योग की अग्नि में तपा हुआ शरीर जिसे प्राप्त होता है, उसे न कोई रोग होता है, न उसे बुढ़ापा आता है और मृत्यु भी उसके वश में हो जाती है।

उपनिषदों में प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'प्राण' के संबंध में वर्णन प्राप्त है। प्रश्नोपनिषद् (2/6) कहता है–फ्प्राणे सर्व प्रतिष्ठितमय अर्थात् प्राण वह तत्त्व है जिसके होने पर ही सब की सत्ता है। प्रश्नोपनिषद् (2/13) में पुनः कहा गया है– फ्प्राणस्येदं वशे सर्वम्य अर्थात् प्राण के वश में यह सम्पूर्ण जगत है, एवं फ्आत्मन एषः प्राणो जायते, (प्रश्नोपनिषद्–3/3) अर्थात् यह प्राण उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है।

हठयोग के घटक तत्वों में नाड़ी ज्ञान का एक अलग एवं विशिष्ट स्थान है और इसका वर्णन हमें कठोपनिषद् में प्राप्त होता है–जहाँ वर्णित है कि हृदय में एक सौ एक प्रधन नाड़िया है, जो वहाँ से सब और फैली हुई हैं। उनमें से एक नाड़ी जिसको सुशुम्ना कहते है, हृदय से मस्तिश्क की और गयी है। भगवान के परमधम में जाने का अधिकारी उस नाड़ी के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर सबसे ऊचे लोक में अर्थात् परमधम में जाकर अमृतस्वरूप परमानन्दमय परमेश्वर को प्राप्त हो जाता हैं, वहीं दूसरे जीव दूसरी नाड़ियों के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर अपने–अपने कर्म और वासना के अनुसार नाना योनियों को प्राप्त होते है।[12] इसी प्रकार योगशिखोपनिशद् में योग की परिभाषा दी गई है जो हठयोग के ग्रंथों से मेल खाती है। इस परिभाषा के अनुसार–"प्राण व अपान की एकता, स्वरजरूपी कुण्डलिनी शक्ति का स्वरेतरूपी आत्मतत्व या ब्रह्मतत्व के साथ मिलन कराना, सूर्य ओर चन्द्र स्वरों का मिलन तथा जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ये सभी अवस्थायें योग कहलाती है।[13] यह परिभाषा संयोगपरक परिभाषा है। इन सभी युग्मों के मिलन से जीवात्मा अपने स्वरूप को पहचान लेता है तब उसका अज्ञान नश्ट होकर ज्ञान का उदय हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप उसके सभी दुःख समाप्त हो जाते है। इसी प्रकार हठयोग के अन्तिम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार या आत्मज्ञान की प्राप्ति के संबंध में वृहदराण्यकोपनिषद् में कहा गया है– "आत्मा वा अरे द्रश्टव्यः श्रोतव्यों मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"।[14] अर्थात् आत्मा ही जानने योग्य है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन(ध्यान) का आश्रय लेना चाहिए। इनके द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार संभव है। इस प्रकार उपनिषदों में हठयोग विषयक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त कठोपनिशद्, तैत्तिरीयपनिशद्, छान्दोग्यपनिषद्, ध्यानबिन्दुपनिषद, शाण्डिलयोपनिषद्, योगतत्वोपनिषद् आदि उपनिषदों में योगांगों का वर्णन प्राप्त होता है।

इसी क्रम में पुराणों में भी हठयोग विषयक ज्ञान वर्णित है। जिसका प्रमुख उदाहरण सर्वषिरोमणि भागवतपुराण है। इस पुराण में वर्णित है कि कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधर से उठाकर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस पुराण में हठयोग सम्बन्धी क्रियाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अग्निपुराण में आसनों के अतिरिक्त युक्त प्राणायाम से लाभ एवं अयुक्त प्राणायाम से होने वाली हानियों की भी चर्चा की गई है।[15] षिवमहापुराण में यम–नियम सहित आठ अंगों का उल्लेख कर संक्षेप में आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धरणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग माने है।[16] इसके अतिरिक्त इस पुराण में आठ आसनों का वर्णन भी मिलता है।[17]

इसी प्रकार वेदों, उपनिषदों व पुराणों के अतिरिक्त यदि प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रा के ग्रंथों का अध्ययन किया जाए तो उनमें हठयोग विषयक ज्ञान का उल्लेख प्राप्त होता है। आयुर्वेद शास्त्रा की वमन क्रिया तथा अर्वाचीन हठयोग के प्रथम अंग के षट्क्रमों की प्रमुख गजकरणी क्रिया[18] एवं वमन धौति[19] रूपी उपांग क्रिया में प्रकार भेद होने पर भी मौलिक सामंजस्य यह है कि दोनों क्रियाएं शरीर को कफ–पित्त व इनसे संबंधित रोगों को दूर कर शरीर को स्वच्छ व नीरोगी बनाती है। "चरक–संहिता के अध्याय बीस में वर्णित है कि– कफ में वैद्य सम्पूर्ण उपक्रमों में से वमन को प्रधनतम मानते है क्योंकि वह आदि से ही अमाशय में अनुप्रविष्ट होकर विकार संबंधी कफ की जड़ को अषेषतः ऊपर खींच लाता है और वहाँ पर कफ के जीते जाने पर शरीर के अन्तर्गत कफ के विकार शान्त हो जाते है।[20] इसी प्रकार जहाँ घेरण्डसंहिता एवं हठप्रदीपिका में वमन हेतु जल किस प्रकार का होना चाहिए इसको स्पष्ट नहीं किया गया हैं, परन्तु आयुर्वेद के ग्रंथों में इसकी चर्चा करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि "कफ रोगों में पीपल, मैनफल और सेंध नमक इनके चूर्ण को गरम जल में, पित्त रोगों में परवल, अडूसा और नीम इनको शीतल जल में तथा अजीर्ण रोगों में गरम जल में सेंध नमक डालकर वमन करना चाहिए[21] और इन सब वमनों में सेंध नमक सहित देना हितकर माना गया है।[22] वहीं आयुर्वेद की नस्यक्रिया और अनुवासन बस्ति हठयोग की नेति क्रिया और वज्रोलिमुद्रा के समकक्ष ही है क्योंकि इन क्रियाओं की विधि एवं इनसे प्राप्त लाभों में कोई विशेष भेद नहीं है, यदि आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णित क्रियाओं में औषधियों को सम्मिलित नहीं किया जाये। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्वाचीन हठयोग के प्रथम अंग के रूप में प्रतिष्ठित षट्कर्मो[23] को ईसवीं शताब्दीं से पूर्व तथा उसके कुछ समय बाद के आयुर्वेद ग्रंथों में आये हुए पंचकर्मो[24] में स्थान मिल चुका था। योगासनों के संबंध में चर्चा करें तो फ्हठयोग के ग्रंथों में मुख्य रूप से वर्णित आसन जिनसें स्थिरता, आरोग्यता एवं लघुता प्राप्त होती है, [25] का वर्णन ईसा पूर्व रचित महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्रा में देखने को मिलता है जहाँ महर्षि पतंजलि ने आसनों से स्थिरता और सुख प्राप्त होने की बात कहीं है।[26] वहीं हठयोग के महत्त्वपूर्ण अंग प्राणायाम से ज्ञान को ढकने वाला आवरण अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है।[27]

इस प्रकार हम देखते है कि हठयोग विषयक ज्ञान ईसा पूर्व रचित वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं आयुर्वेद के ग्रंथों में देखने को मिलता है। इस प्रक्रिया प्रधन योग परम्परा की प्राचीनता के विषय में यदि हम और चर्चा करे तो –"यह प्रक्रिया प्रधन योग परम्परा भारत देश की एक विशेष देन है। इसका इतिहास भारत के प्रागैतिहासिक

काल से सम्बन्धित है। सिन्धुघाटी की सभ्यता में उपलब्ध मुद्राओं एवं पद्मासन की स्थिति में उत्कीर्ण किसी देव विशेष का चित्रा इस बात का परिचायक है कि यह प्रक्रिया प्रधन योग परम्परा प्रागैतिहासिक काल में भी विद्यमान एवं भारतीय ऋषियों की अक्षय सम्पति थी। श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय भी अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्षन का सरल परिचय' में इस संबंध में कहते है–"सचमुच ये क्रियाएँ बहुत प्राचीन थीं। सिंधु सभ्यता के ठोस ध्वंसावषेष उदाहरण के लिए पत्थर की मूर्तियाँ तथा मुहरों पर अंकित चित्रा अकाट्य रूप में इस बात का सूचन करते हैं कि ये क्रियाएँ इस देश में 3000 ईसवीं पूर्व तक भी प्रचलित थीं। कालक्रम से ये क्रियाएँ बहेतु सामग्री जैसी हो गई जिन्हें तरह–तरह के धर्मिक सम्प्रदायों ने ही नहीं अपितु दार्शनिक सम्प्रदायों तक ने भी अपना लिया था"।[28]

संदर्भ

1. पूर्व शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
2. ऋग्वेद –10/90/13
3. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । ऋग्वेद –10/189/2
4. अथर्ववेद–11/4/1
5. अथर्ववेद–11/4/10
6. अथर्ववेद–10/2/31
7. ऋग्वेद अंक संहिता–1/34/9
8. श्वेताश्वरोपनिषद्–2/10
9. वही–2/13
10. वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले । अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाड़ीविशु(र्हठयोगलक्षणम ।। ह.प्र. –2/78
11. श्वेताश्वरोपनिषद्–2/12
12. शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धनमाभिनिः सृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वघ्न्या उत्क्रमणे भवन्ति।। कठोपनिषद्–2/3/16
13. यो{पानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा सूर्यचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनः। एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।। योगशिखोपनिषद्–1/133
14. वृहदारण्यकोपनिषद्–4/5/6
15. सुरेन्द्र कुमार शर्मा– हठयोग : एक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य एवं हठयोगप्रदीपिका, पृष्ठ–31
16. शिवपुराण–7/2/37–14–16
17. स्वस्तिकं पद्मध्येन्र्दु वीरं योगं प्रसाधितम् । पर्यघङ्क च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा ।। वही–7/2/37–20
18. उदरगतपदार्थमुद्वमन्ति पवनमपानमुदीर्य कण्ठनाले। क्रमपरिचयवश्यनाडिचक्रा गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः।। ह.प्र. –2/26
19. नित्यमभ्यासयोगेन कफ्रफपित्तं निवारयेत् । घे.स.–1/39
20. वमनं तु सर्वोपक्रमेभ्य श्लेष्मणि प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः . . . चरक संहिता–अध्याय–20/18
21. कृष्णाराठफ्रफलं सिंधुकफ्रफे कोष्णजलैः पिबेत् । पटोलवासानिम्बैश्चपित्ते शीतं जलं पिबेत् ।। सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् । अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुं पीत्वा वमेत्सुधीः।। योगतरंगिणी–6/19–20
22. वमनेषु च सर्वेषु सैंध्वं मधुना हितम् । योगतरंगिणी– 6/12
23. धैतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ।। ह.प्र.–2/22
24. वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम् । एतानि प×च कर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ।। योगतरंगिणी–9/36
25. कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाघ्गलावम् ।। ह.प्र.–1/17
26. स्थिरसुखमासनम् । योगसूत्रा–2/46
27. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् । योगसूत्रा–2/46
28. श्रीदेवीप्रसाद चट्टोपाध्याय– भारतीय दर्शन का सरल परिचय,